International Journal of Advanced Research in Management and Social Sciences
ISSN: 2278-6236

DALIT SAMAJ KA BADLATA PRIDRISHAY

Santosh Rani and Gurmeet Singh
Department of Hindi, Panjab University, Chandigarh

परिचयः

हमारे देश को आजाद हुए बहुत अधिक समय बीत चुका है। लेकिन आज भी हमारे समाज में दलितों को तुच्छ व हीन दृष्टि से देखा जाता है। दलित समाज का व्यक्ति आज भी आजादी के लिए रोता है। वह कहता है, चाहे भारत आज आजाद हो चुका है लेकिन दलित आज के समय में भी गुलाम हैं। दलित वर्ग के लोग आज भी सवर्णों के अत्याचारों के शिकार होते जा रहे हैं, उन्हें दिन–प्रतिदिन विभिन्न प्रकार की समस्याओं को सहन करना पड़ता है। यदि सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो आज के समय में भी दलित देश में मौजूद सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं, हर्षोल्लास, समानता, स्वतन्त्रता, मौलिक अधिकार और कर्तव्यों आदि सब से अछूते हैं। हर क्षेत्र में उनके मान–सम्मान को ठेस पहुँचती आई है। भारतीय समाज की लोक–तांत्रिक व्यवस्था में अपनी आस्था रखने वाले हर व्यक्ति के लिए समानता, स्वतन्त्रता, बंधुता और सामाजिक लोकतंत्र का प्रमुख अधिकार है। वह मान–सम्मान के साथ कही भी रह सकते हैं।

दलितों की वर्तमान स्थिति

हमारे देश में दलितों से छुआछूत का मामला हो या मंदिर में प्रवेश को लेकर टकराहट या उनसे व्याभिचार की घटनाएं– लगभग हर रोज देश के किसी न किसी कोने से देखने–सुनने को मिल जाती हैं। मंदिर में प्रवेश के मसले पर दलितों की हत्या तक कर दी जाती है। थोड़ी पुरानी बात है। उत्तर प्रदेश में सपा सरकार के आने के बाद बरेली के पास ही एक गांव में मंदिर में दलितों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया गया था। अखबार एवं टेलीविजन चैनलों ने इस घटना को छापा–दिखाया। पुजारी मंदिर में ताला लगाकर गांव छोड़कर भाग गया लेकिन पुलिस प्रशासन और सरकारी तंत्र में इसे लेकर कोई सुगबुगाहट नहीं दिखी।

देश में दलितों से छुआछूत की इस प्रकार की घटनाओं पर नियंत्रण पाने के लिए बहुत कड़े कानून मौजूद हैं। 'दलित एक्ट' के तहत सजा के कठोर प्रावधान किए गए हैं। दलित उत्पीड़न के संदर्भ में उन्हें सही तरीके से लागू किया जाए तो उसके भय से ही काफी हद तक ऐसी घटनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। दलित, सवर्णों के रास्ते से गुजर कर न जाएं इसलिए महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में कई जगहों पर बड़ी और ऊंची–ऊंची दीवारें खड़ी कर दी गईं।

सच कहा जाए तो जाति–व्यवस्था या दलित उत्पीड़न को खत्म करने के प्रयास अपने देश में ईमानदारी से नहीं हुए? स्वतंत्रता संग्राम के समय की बात करें तो 1929–30 के आसपास गांधी जी की बाबा साहब अम्बेडकर की पहली मुलाकात हुई थी तब उन्होंने अम्बेडकर से कहा कि मैंने देश की आजादी का आंदोलन छेड़ रखा है। अम्बेडकर ने बहुत दिलचस्प जवाब दिया, 'मैं सारे देश की आजादी की लड़ाई के साथ उन एक चौथाई जनता के लिए भी लड़ना चाहता हूं जिस पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। आजादी की लड़ाई में सारा देश एक है और मैं जो लड़ाई लड़ रहा हूं, वह सारे देश के खिलाफ है। मेरी लड़ाई बहुत कठिन है।'औपनिवेशिक सत्ता (अंग्रेजों) के खिलाफ तो सारा देश खड़ा था इसलिए उनका जाना तय था लेकिन देश के लोग अपने ही लोगों के साथ जो भेदभाव बरत रहे हैं तो मेरी लड़ाई तो उनसे भी है। दलितों, पिछड़ों को न तो जमीन रखने का अधिकार था, न ही उन्हें शिक्षा पाने का अधिकार था। वे सदियों से जमींदारों और सामंतों के खेतों और कारखानों में मजदूरी करते चले आ रहे थे। हिंदू धर्म, वर्ण व्यवस्था और जातिगत व्यवस्था की खुलकर वकालत करते हैं।

शिक्षा व्यवस्था और दलित समाज

आज हमारे देश में दलितों में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है लेकिन अभी भी शिक्षण संस्थानों में अनुपात में इनकी संख्या बहुत ही कम है। आजादी से पहले की सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि दलित समाज के लोगों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। इसके बाद अंग्रेजों के शासनकाल में स्थितियाँ कुछ बदलीं और एक मुक्त शिक्षा व्यवस्था लागू हुई। इससे कुछ लोगों को लाभ मिला था। देश की आजादी

के बाद इस बात को स्वीकार किया गया और इस दिशा में नीति बनाने की जरूरत भी महसूस की गई। इसके परिणामस्वरूप दो प्रकार की शिक्षा नीति बनाई गईं– एक तो इस बात पर आधारित थी कि इतिहास में जो वर्ग शिक्षा से वंचित रहे हैं उन्हें आरक्षण के माध्यम से मुख्यधारा में आने का अवसर दिया जाए. इसे उनकी जनसंख्या के आधार पर तय किया गया। दूसरी प्रकार की नीति के तहत गरीब और पीछे छूटे हुए लोगों के लिए छात्रवृत्ति, किताबें और अन्य रूपों में आर्थिक मदद जैसी व्यवस्था की गई।

इसके साथ ही यह भी देखने में आया कि कि कई बच्चे प्राथमिक शिक्षा के बाद आर्थिक चुनौतियों के कारण आगे माध्यमिक और उच्च शिक्षा से वंचित रह जा रहे हैं। इसके लिए उन्हें छात्रावासों की और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई।

देश में इस प्रकार के प्रयासों की वजह से हम पाते हैं कि शिक्षा का ग्राफ तेजी से ऊपर गया है लेकिन जनसंख्या के अनुपात से देखें तो अभी भी दलितों का साक्षरता प्रतिशत अन्य वर्गों के लोगों की तुलना में काफी कम कम है। ऐसा ही उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले छात्रों में भी देखने को मिलता है. वहाँ प्रवेश दर 10 प्रतिशत है लेकिन अनुसूचित जातियों के लिए पाँच प्रतिशत ही देखने को मिल रहा है। इसकी एक वजह नीतियों के लागू होने को लेकर भी है पर यह केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं है बल्कि सभी क्षेत्रों में नीतियों के लागू होने को लेकर कुछ चुनौतियाँ और कुछ खामियाँ हैं।

सुधार की दरकार

देश में शिक्षा नीति को और प्रभावी बनाने के लिए कोठारी आयोग की सिफारिशों को लागू किया जाए। सामान्य शिक्षा की व्यवस्था लागू हो। कोठारी आयोग ने इस पर काफी बल दिया था कि गुणवत्ता के स्तर पर सभी को एक समान शिक्षा उपलब्ध कराई जाए।

देश में आज के समय में भी कई दलित परिवारों के बच्चे मैट्रिक के बाद की पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। आज देश में केंद्रीय कर्मचारियों के बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय हैं। सैनिकों के बच्चों के लिए सैनिक स्कूल हैं, गांव में जो मेरिट वाले बच्चे हैं उनके लिए नवोदय स्कूल हैं, और सामान्य बच्चों के लिए नगर निगम के स्कूल हैं। प्राइवेट की तो बात ही नहीं कर सकते, उनमें अंतरराष्ट्रीय मानकों तक के आधार पर पढ़ाई हो रही है। इससे एक प्रकार की असमानता हम लोगों ने ही समाज में उत्पन्न कर दी है। समाज का एक विशेष आर्थिक पहुंच वाला व्यक्ति ही अपने बच्चों को यह शिक्षा दे पा रहा है और बाकी के लिए सरकारी पाठशालाएं हैं।

हम अच्छे स्कूलों को खत्म न करें लेकिन आम लोगों के लिए उपलब्ध शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक से लेकर सामग्री तक सुधार तो लाएं ताकि गरीब तबका और दलित समाज के बच्चे औरों के सामने खड़े तो हो सकें।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के अलावा देश में उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधारने की भी आवश्यकता है और सरकार को इसका अहसास भी है। आज के समय में ऐतिहासिक कारणों से पिछड़े वर्ग जैसे आदिवासी, दलित, महिलाएं, अल्पसंख्यक और फिर गरीब व्यक्ति इन सभी को शिक्षा में समान अधिकार दिए जाने की जरूरत है। जिन दलितों की स्थिति सुधरी है उन्हें शिक्षा में समान अधिकार तो मिलने ही चाहिए किन्तु आर्थिक सहूलियतें उन्हें ही देनी चाहिए जोकि गरीब हैं।

मूल्य आधारित शिक्षा

एक बात जो अत्यन्त आवश्यक है, वह है मूल्य आधारित शिक्षा की। आज देश में औपचारिक शिक्षा तो छात्रों को मिल जाती है लेकिन नैतिक और सामाजिक शिक्षा नहीं मिल पा रही है। आरक्षण और सांप्रदायिकता जैसे मुद्दों को वैज्ञानिक तरीके से देखने की जरूरत होती है किन्तु वो नहीं हो पा रहा है। इन मुद्दों पर होने वाली प्रतिक्रिया अक्सर विपरीत होती है। प्रत्येक विद्यार्थी चाहे किसी भी विषय का हो, उसे यह मालूम होना चाहिए कि हमारे समाज की मूलभूत समस्याएं, गरीबी, लिंग आधारित विभेद, जाति विभेद, शोषण और बहिष्कार जैसी समस्याओं का उन्हें एहसास होना चाहिए।

हमारे समाज में वैचारिक मतभेद हो सकते हैं लेकिन इनपर वे सकारात्मक रूप से सोच सकेंगे। समस्या तो यह है कि आज के शिक्षितों में से कई लोगों को समाज और देश की समस्याओं की समझ ही नहीं है। हम देखते हैं कि आज भी समाज के शिक्षित वर्ग में समाज और देश की समस्याओं को समझने की सकारात्मक दृष्टि का अभाव है। शिक्षा के समान अवसर, आर्थिक सुरक्षा, मूल्य आधारित शिक्षा,

सामाजिक. सांप्रदायिक और लिंग विभेद जैसी समस्याओं से अवगत कराने वाली शिक्षा –प्रणाली को लागू करने से देश में न केवल शिक्षा के स्तर में सुधार आएगा बल्कि साक्षरता का दर भी बढ़ेगा।

मुख्य सिद्धांत एवं आदर्श

आज का दलित आंदोलन क्रमशः मानवीय गरिमा तथा सक्षमता पर अधिक बल देता दिखाई दे रहा है। एक भूमि के टुकड़े पर अपनी इच्छा का घर बनाकर और अपने इच्छित कर्म को अपनाने की जैसी प्रबल मांग आज के दलित वर्ग में मिलती है, वैसी पहले कभी नहीं थी। ज्योतिराव फुले के समय में ब्राह्मणवाद के विरोध में जुलूस निकालने वाले दलितों को अब नए अर्थ मिल गए हैं। अब वे समानता और गरिमा पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं।दलितों के प्रति यह संवेदनशीलता राजनीतिक चुनावों में क्या रंग दिखाएगी, यह अभी कहना संभव नहीं है। यह जरूर है कि इन्हें जोड़ने वाले तो बहुत से मुद्दे बना लिए गए हैं, लेकिन अभी भी इस दमित–शोषित वर्ग में खाइयां बहुत सी हैं, जिन्हें पाटने की जरूरत है।

आधुनिक भारत व दलित अधिकार

आज दलितों को भारत में जो भी अधिकार मिले हैं उसकी पृष्ठभूमि इसी शासन की देन थी। यूरोप में हुए पुनर्जागरण और ज्ञानोदय आंदोलनों के बाद मानवीय मूल्यों का महिमा मंडन हुआ। यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शों के जरिए ही यूरोप में एक ऐसे समाज की रचना की गई जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। ये अलग बाद है कि औद्योगिकीकरण के चलते इन मूल्यों की जगह सबसे पहले पूंजी ने भी यूरोप में ली लेकिन इसके बावजूद यूरोप में ही सबसे पहले मानवीय अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पड़ना लाजमी था और पड़ा भी। इसका सीधा सा असर हम भारत के संविधान में देख सकते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद इन्हीं मानवीय अधिकारों की रक्षा करते नजर आते हैं। भारत में दलितों की कानूनी लड़ाई लड़ने का जिम्मा सबसे सशक्त रूप में डॉ० अम्बेडकर ने उठाया था। डॉ अम्बेडकर दलित समाज के प्रणेता हैं। बाबा साहब अंबेडकर ने सबसे पहले देश में दलितों के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की पैरवी की। साफ दौर भारतीय समाज के तात्कालिक स्वरूप का विरोध और समाज के सबसे पिछड़े और तिरस्कृत लोगों के अधिकारों की बात की। राजनीतिक और सामाजिक हर रूप में इसका विरोध स्वाभाविक था। यहां तक की महात्मा गांधी भी इन मांगों के विरोध में कूद पड़े। बाबा साहब ने मांग की दलितों को अलग प्रतिनिधित्व (पृथक निर्वाचिका) मिलना चाहिए यह दलित राजनीति में आज तक की सबसे सशक्त और प्रबल मांग थी। देश की स्वतंत्रता का बीड़ा अपने कंधे पर मानने वाली कांग्रेस की सांसें भी इस मांग पर थम गई थीं। कारण साफ था समाज के ताने बाने में लोगों का सीधा स्वार्थ निहित था और कोई भी इस ताने बाने में जरा सा भी बदलाव नहीं करना चाहता था। महात्मा गांधी जी को इसके विरोध की लाठी बनाई गई और बैठा दिया गया आमरण अनशन पर। आमरण अनशन वैसे ही देश के महात्मा का सबसे प्रबल हथियार था और वो इस हथियार को आये दिन अपनी बातों को मनाने के लिए प्रयोग करते रहते थे। बाबा साहब किसी भी कीमत पर इस मांग से पीछे नहीं हटना चाहते थे वो जानते थे कि इस मांग से पीछे हटने का सीधा सा मतलब था दलितों के लिए उठाई गई सबसे महत्वपूर्ण मांग के खिलाफ में हामी भरना। लेकिन उन पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा। और अंततः पूना पैक्ट के नाम से एक समझौते में दलितों के अधिकारों की मांग को धर्म की दुहाई देकर समाप्त कर दिया गया। इन सबके बावजूद डॉ० अंबेडकर ने हार नहीं मानी और समाज के निचले तबकों के लोगों की लड़ाई जारी रखी। अंबेडकर की प्रयासों का ही ये परिणाम है कि दलितों के अधिकारों को भारतीय संविधान में जगह दी गई। यहां तक कि संविधान के मौलिक अधिकारों के जरिए भी दलितों के अधिकारों की रक्षा करने की कोशिश की गई।

भारत में बदलता दलित समाज का परिदृष्य

हमारे देश में आज दलित राजनीति का नयारूख देखने को मिल रहा है। दलितों ने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का जिस प्रकार विरोध किया है, संघर्ष का जो रास्ता चुना है, जिस प्रकार की संगठित शक्ति दिखाई है, और जिस प्रकार निश्चित मानदंडों पर आधारित कदम बढ़ाए हैं, वे काबिल–ए–तारीफ है। हालांकि दलित राजनीति के कोटा, संरक्षण, बहुजन, उपजाति आदि के नारे अभी भी चल रहे हैं,

परंतु उनमें एक बदलाव दिखाई दे रहा है। अब इस प्रकार के मामलों का नेतृत्व स्वयं दलित ही कर रहे हैं।

इस बदलाव के कुछ पक्ष ध्यान देने योग्य हैं, जैसे दलित अपनी राजनीति के प्रसार के लिए मीडिया के महत्व को पहचानने लगे हैं। दलित समाज के लोगों द्वारा बाबा साहब अंबेडकर की उपस्थिति को फिर से सुदृढ़ किया गया है। दलित नेतृत्व का ऐसा वर्ग उभरकर सामने आया है, जो बहुत पढ़ा–लिखा है। यह एक ऐसा वर्ग है, जो दलित–शोषण का इतिहास जानता है। और यही वर्ग चुनावों की दृष्टि से भी अहम् भूमिका रखता है। इस वर्ग ने ब्राह्मणवाद से शत्रुता साध रखी है और यह अपने लिए एक नया सामाजिक ढांचा तैयार कर रहा है।

दलितों का यह उठान भारतीय भू–भाग में एक अलग प्रजातांत्रिक राजनीति का परचम फहराना चाहता है। कोई भी एक राजनैतिक दल इनके नेतृत्व की सूची में नहीं है। लेकिन लगभग सभी राजनैतिक दलों का भविष्य इन पर टिका हुआ है।

आज के समय में समान अवसरों और प्रतिफलों के न मिलने का प्रभाव न केवल उनके आर्थिक स्तर पर पड़ा है, बल्कि उनके जीवन जीने के तरीके और उनकी सोच पर भी पड़ा है। यही कारण है कि केवल सार्वजनिक ही नहीं, बल्कि सभी क्षेत्रों में दलित वर्ग एक भेड़ चाल की तरह ही चलता जा रहा है। वह कुछ असाधारण या निर्णयात्मक नहीं कर पाया। यहां तक कि वे उच्च शिक्षा संस्थानों में भी अधिकतर सामाजिक अध्ययन वाले विषयों तक ही सीमित रह जाते हैं। इन क्षेत्रों में उन्हें न तो रोजगार के अधिक अवसर मिल पाते हैं और न ही कोई नई सोच मिल पाती है।

आधुनिक समय में गांवों में भी बड़े पैमाने पर भूमि व कृषि सुधारों के बावजूद भू–स्वामियों एवं सवर्ण समुदायों का ही बोलबाला है। इन सभी में दलित वर्ग एक कोने में ही सिमटा रहता है। कार्यक्षेत्र में भी उनकी काबिलियत के अनुकूल मौके नहीं मिल पाते। उन्हें दोस्ताना व्यवहार की जगह हीनता की भावना से ही देखा जाता है।

संघर्ष के आयाम

देश में समस्त दलित वर्ग वर्तमान समय में जिस सामाजिक संघर्ष में उलझा हुआ है, उसका उद्देश्य धन, जाति अथवा शक्ति जैसी केवल बाहरी ताकतों से लड़ना नहीं है। वह तो मानव मात्र के रुप में अपने को दास तथा पतित समझे जाने से मुक्ति पाना चाहता है। वह अपने को सामाजिक और मानसिक स्तर पर समान रूप से स्थापित करना चाहता है। आज की दलित राजनीति केवल राजनैतिक शक्ति अथवा धर्मांतरण तक सीमित नहीं है। वह अपने संघर्ष को एक नए मुकाम पर ले जाना चाहती है। इसके लिए उन्हें नए–नए संसाधनों का साथ भी मिला हुआ है।

वर्तमान परिदृष्य में दलित समाज के छोटे–छोटे गांवों तक के लोग अपनी मांगों के समर्थन में शारीरिक और भावनात्मक रूप से एकजुट हो रहे हैं। आए दिन दलित वर्ग के पक्ष में नारे लगाए जा रहे है। दलितों की शौर्य–गाथाओं को दोहराया जा रहा है। जहां उन पर अत्याचार हुए, उन स्थानों को तीर्थों की तरह पूजा जा रहा है। उनके समर्थन में लगातार गीत गाए जा रहे हैं, नुक्कड़ नाटक खेले जा रहे हैं। इस पूरे संघर्ष में दलित स्त्री–पुरूष कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। इन सभी घटनाओं के बीच दलित समाज के लोग डॉ. भीमराव अंबेडकर को वे कहीं नहीं भूलते। आज भी डॉ. भीमराव अंबेडकर ही दलितों के प्रधान नेता हैं।

आधुनिक समय में देश में दलित समाज के लोगों के साथ सभी पिछड़ी जातियों के लोग और मुसलमान भी आ खड़े हुए हैं। इससे उनकी शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई है। गौ–रक्षा के नाम पर जिन लोगों ने मुसलमानों और दलितों को सताया है, उन्हें इस बात का नहीं पता कि ऐसा करके उन्होंने इन दोनों ही जातियों की पारस्परिक नजदीकियों को बढ़ा दिया है।दलितों के लिए लगने वाले नारे अब स्वाभिमान, आजादी, आत्माभिमान और गरिमा की बात करते हैं। ये नारे पूर्व में दलितों के प्रति हुए अत्याचारों के विरोध में शंखनाद की तरह सुनाई देते हैं। आज के दलित महिलाओं की समानता के प्रति भी बहुत जागरूक हैं। वे चाहते हैं कि उनके समाज की महिलाएं अपना इच्छित जीवन जी सकें। आज देश में सभी दमित वर्गों और समूहों में एकजुटता का अत्यधिक संचार हो चुका है।

संदर्भ सूची

- आधुनिकता के आईने में दलित, अभय कुमार दूबे,
- अंबेडकर और दलित, राजकुमार, 2011
- दलित दस्तक, मासिक पत्रिका, अशोक दास, 2012
- दलित उत्पीड़न की परम्परा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, 2007
- आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, देवेंद्र चौबे, 2009
- अंबेडकर, दलित एंड बौद्धिज्म, नंदराम मानक, 2008
- दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ एन. सिंह
- दलित पैंथरः भूमिका एवं आंदोलन, डॉ शरण कुमार लिंबाले
- भारत में दलित, प्रो. सुखदेव थोरात